Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सं० १२६

कश्मीरी-साहित्य की नव्यतम प्रवृत्तियाँ

डॉ० शिबन कृष्ण रैणा

अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, राजकीय कॉलेज,

नाथद्वारा (राजस्थान)

दिनांक १७ और १८ नवम्बर, १९७१ ई०

बुधवार और गुरुवार, २६ और २७ कार्त्तिक, शकाब्द १८९३

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सं०
१२६

कश्मीरी-साहित्य की नव्यतम प्रवृत्तियाँ

डॉ० शिबन कृष्ण रैणा
अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, राजकीय कॉलेज,
नाथद्वारा (राजस्थान)

दिनांक १७ और १८ नवम्बर, १९७१ ई०
बुधवार और गुरुवार, २६ और २७ कार्तिक, शकाब्द १८९३

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कश्मीरी-साहित्य की नव्यतम प्रवृत्तियाँ

रूपरेखा

१. नव्य : नव्यतम प्रवृत्तियाँ : सीमा-निर्धारण

२. राष्ट्रीय प्रगतिवादी प्रवृत्ति (सन् १९४७—१९५३ ई०) [सन्दर्भ : स्वरूप]

क. कबाइली आक्रमण ।

ख. 'कश्मीर छोड़ दो' जन-आन्दोलन ।

ग. कल्चरल-फ्रण्ट का गठन ।

३. प्रयोगवादी प्रवृत्ति (सन् १९५३—१९६० ई०) [सन्दर्भ : स्वरूप]

क. राजनीतिक स्थिरता ।

ख. बदलते जीवन-मूल्य ।

ग. टेकनीक की समुन्नति का अभियान ।

४. मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति (सन् १९६० ई० से) [सन्दर्भ : स्वरूप]

क. शिल्प-विधान की अनुपयुक्तता ।

ख. जीवन के साथ रचना का तालमेल ।

ग. रचनाकारों की मनोवैज्ञानिक दृष्टि ।

५. नव्यतम प्रवृत्तियाँ : कविता

क. राष्ट्रीय प्रगतिवादी कविता ।

ख. प्रयोगवादी कविता ।

ग. प्रतिनिधि कवि : सोदाहरण विवेचन ।

६. नव्यतम प्रवृत्तियाँ : नाटक

क. कश्मीरी-नाटक, विकास : परम्परा ।

ख. कश्मीरी का प्रथम साहित्यिक नाटक ।

ग. सन् १९४७ ई० से पूर्व कश्मीरी रंगमंच एवं नाटक-साहित्य ।

घ. सन् १९४७ से १९५६ ई० तक का कश्मीरी नाटक-साहित्य : मुख्य प्रवृत्ति—प्रगतिवादी ।

ङ. सन् १९५६ ई० के बाद कश्मीरी-नाटक की स्थिति : मनोवैज्ञानिक दृष्टि की प्रधानता ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

७. नव्यतम प्रवृत्तियाँ : कहानी

क. कश्मीरी की प्रथम कहानी ।

ख. सन् १९५३ से १९६० ई० तक की कश्मीरी-कहानी : स्वरूप और दिशाएँ ।

ग. अख्तर की कहानियाँ : नवीन प्रयोग ।

घ. सन् १९६० ई० के बाद की कश्मीरी-कहानी ।

ङ. प्रतिनिधि कहानीकार : उनकी मनोवैज्ञानिक दृष्टि, सोदाहरण विवेचन ।

परिशिष्ट : एक

कश्मीरी-उपन्यास ।

परिशिष्ट : दो

सहायक सामग्री की सन्दर्भ-सूचना ।

०

नागरी-कश्मीरी-लिपि-निर्देशिका

विशिष्ट ध्वनियों	अ	[┴]	लˈर (मकान), नˈर (बाँह)
के स्वर	आ	[+]	लाˈर (खीरा), बाˈथ (गीत)
	उ	[़ु]	तु़र (चिथड़ा), गु़थ (लहर)
	ऊ	[़ू]	तू़र (सर्दी), डू़स (गदा)
	ओ	[ोˈ]	बोˈन (नीचे), दोˈद (दूध)
विशिष्ट ध्वनियों	च़		च़र (खटमल), चा़पुन (चबाना)
के	छ़		छा़य (छाया), छ़ल (छल)
व्यंजन			
	ज़		ज़ान (परिचय), ज़ाल (जाल)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कश्मीरी-साहित्य के आधुनिक काल का समारम्भ यद्यपि सन् १६०१ ई० (युगकवि अब्दुल अहद आज़ाद) से होता है, किन्तु उसमें नव्यतम प्रवृत्तियों का सन्निवेश सन् १९४७ ई० के बाद ही मिलता है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना जरूरी है कि कश्मीरी के आधुनिक-कालीन साहित्य की सर्जन-प्रक्रिया उतनी वैविध्यपूर्ण नहीं रही, जितनी हिन्दी की मिलती है। इसलिए, उसमें नव्यतम प्रवृत्तियों का अन्वेषण करने के लिए सन् १९४७ ई० से लेकर रचे गये साहित्य को ही आधार बनाना पड़ेगा। सन् १९४७ ई० से अबतक रचे गये कश्मीरी साहित्य की मुख्य तीन नव्य प्रवृत्तियाँ मिलती हैं, जिनमें अन्तिम, यानी तीसरी प्रवृत्ति नव्यतम कही जा सकती है। ये प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं :

१. राष्ट्रीय प्रगतिवादी प्रवृत्ति (सन् १९४७–१९५३ ई०)
२. प्रयोगवादी प्रवृत्ति (सन् १९५३–१९६० ई०)
३. मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति (सन् १९६० ई० से)

राष्ट्रीय प्रगतिवादी प्रवृत्ति

सन्दर्भ : स्वरूप

सन् १९४७ ई० का वर्ष कश्मीर के इतिहास में विशेष महत्त्व रखता है। इस वर्ष कश्मीर की सुरम्य घाटी पर पाकिस्तान द्वारा समर्थित कबाइलियों का आक्रमण हुआ, जिसके फलस्वरूप अनेक देशभक्तों ने एकत्र होकर पाकिस्तानी हमले का साहित्यिक मोर्चे से मुकाबला करने के लिए 'कल्चरल फ्रण्ट' नाम की एक अदबी अंजुमन गठित की। इस अंजुमन के सदस्य थे कश्मीर के विभिन्न प्रगतिशील युवा लेखक, कर्मठ समाजसेवी तथा विचारशील चिन्तक। सभी ने मिलकर देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत साहित्य की संरचना की। सन् १९४७ ई० के एक वर्ष पूर्व कश्मीर के नवगठित राजनीतिक दल 'नेशनल कान्फ्रेन्स' ने वर्षों से चली आ रही सामन्तशाही (डोगरा-शासन) के विरुद्ध अभियान छेड़ दिया था। मई, १९४६ ई० में इस अभियान के अन्तर्गत 'कश्मीर छोड़ो' आन्दोलन ने एक व्यापक एवं उग्र रूप धारण कर लिया था। इस आन्दोलन के पीछे चूँकि स्वदेश-प्रेम की भावना तथा अन्य प्रगतिशील तत्त्व काम कर रहे थे, इसलिए कबाइली हमले तक घाटी में एक ऐसा जोशीला एवं तनावपूर्ण माहौल बन चुका था, जिसको 'कल्चरल फ्रण्ट' के साहित्यकारों ने एक अनुकूल एवं सामयिक पृष्ठभूमि के रूप में आत्मसात् कर लिया। इस दौरान जो साहित्य रचा गया, उसका व्यापक ध्येय जनता को देशप्रेम का पाठ पढ़ाकर उसे आर्थिक एवं राजनीतिक दोनों प्रकार की दासता के बन्धनों से मुक्त कराना रहा। इस दौर की मुख्य साहित्यिक प्रवृत्ति राष्ट्रीय प्रगतिवादी रही, जो कश्मीरी-साहित्य में सन् १९५३ ई० तक व्याप्त रही।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रयोगवादी प्रवृत्ति

सन्दर्भ : स्वरूप

सन् १९५३ ई० के आसपास से राजनीतिक परिस्थितियों की स्थिरता के परिणाम-स्वरूप कश्मीर में शान्ति का वातावरण स्थापित होने लगा। फलस्वरूप, साहित्यकारों की विचारधारा में भी नये परिवर्त्तन होने लगे। नई भावभूमि की सृष्टि हुई तथा नई परिवर्त्तित परिस्थितियों के कारण नूतन जीवन-मूल्यों की स्थापना होने लगी। सर्जनकारियों की बदलती हुई बाह्योन्मुख दृष्टि ने साहित्य के शिल्प-पक्ष की समृद्धि के साथ-साथ नवीन प्रयोगों को अपना केन्द्र बना लिया। प्रयोगवादियों ने पहली बार परम्परा से हटकर भावों को मूर्त्त रूप प्रदान करने के लिए विभिन्न नवीन प्रतीकों, बिम्बों तथा अभिव्यक्ति-शैलियों का आश्रय लिया। परम्परागत उपमानों एवं प्रयोगों को नवीन परिवेश में संयोजित कर उन्हें रचना में सफलतापूर्वक 'फिट' कर देना इस प्रवृत्ति के रचनाकारों की प्रमुख विशेषता रही। कविता की शैली में भी पर्याप्त परिवर्त्तन होने लगे। अब रूपक-काव्य, अतुकान्त कविताएँ, प्रगीत आदि जैसी विभिन्न काव्य-शैलियों को अपनाया गया। प्रयोग कथ्य के क्षेत्र में भी हुए, किन्तु बहुत कम।

मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति

सन्दर्भ : स्वरूप

मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति पद्य की अपेक्षा गद्य में अधिक मिलती है। कहानी-साहित्य पर उसकी छाप गहन है। प्रयोगवादी प्रवृत्ति ने रचना की टेकनीक को निःसन्देह नये आयाम दिये, उसे पर्याप्त मात्रा में समुन्नत किया, उसे 'आधुनिकता' का संस्पर्श दिया, किन्तु उसके आन्तरिक सौन्दर्य के साथ वह पूर्ण तालमेल बिठाने में असमर्थ रही। 'टेकनीक की समुन्नति' के इस जनूनी अभियान ने इतना व्यापक रूप पकड़ लिया कि रचना का आन्तरिक सौन्दर्य दब-सा गया। रचना, टेकनीक का बहुरंगी लबादा पहनकर जीवन से किनारा करने लगी तथा वह (जीवन) उसके लिए एक परायी, एक अनजानी वस्तु बन गई। जीवन के प्रति इस तरह के कटाव एवं अलगाव को लेकर कश्मीरी रचना कुछ समय के लिए अस्थायी रूप से, 'आधुनिकता' के जोश में, अपनी लोकप्रियता को एक हद तक जमाने में सफल अवश्य हो गई। किन्तु, बाद में सन् १९६० ई० के आसपास से यह महसूस किया जाने लगा कि रचना मात्र बाह्य सौन्दर्य या शिल्प-विधान के बूते पर जीवित नहीं रह सकती। उसे चिर-सुन्दर बनाने के लिए (जिनके लिए रचना की जाती है, उनके) जीवन के समकक्ष लाना ही पड़ेगा। उधर जीवन में जोरों से बढ़ती हुई व्यस्तता, दुविधा, संशयग्रस्तता, अनास्था, कुण्ठा, निराशा आदि व्यक्ति के मन एवं मस्तिष्क के गूढतम स्तरों को झकझोर रही थीं। फलस्वरूप, रचनाकार रचना के कलेवर से टेकनीक के आरोपित लबादे को उतार फेंकने के लिए विवश हो गया और उसने उसे मानव-चरित्र के सन्निकट लाकर खड़ा कर दिया। अब रचना मानव-चरित्र के विभिन्न रहस्यों, उसकी विभिन्न जटिलताओं, स्वभावगत विशेषताओं, उसके उत्थान-पतन, उसकी गति-अवगति का प्रकाशन करनेवाली

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विधा बन गई। सर्जन की इस प्रक्रिया के पीछे व्यापक रूप से रचनाकारों की जीवन-सापेक्ष मनोवैज्ञानिक दृष्टि प्रधान रही।

उपर्युक्त तीन प्रवृत्तियों के विभिन्न सन्दर्भों एवं स्वरूपों का विश्लेषण कर लेने के बाद इन प्रवृत्तियों का कश्मीरी-कविता, नाटक एवं कहानी-साहित्य के परिपार्श्व में अध्ययन करना अपेक्षित है। कश्मीरी का उपन्यास-साहित्य अभी इतना विकसित एवं समृद्ध नहीं हो पाया है कि उसमें किसी नव्य प्रवृत्ति का अन्वेषण किया जा सके।*

नव्य प्रवृत्तियाँ : कविता

पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि सन् १९४७ ई० के कबाइली हमले तथा सन् १९४६ ई० के 'कश्मीर छोड़ दो' जन-आन्दोलन ने कश्मीरी-साहित्यकारों की सर्जन-प्रक्रिया को एक नया मोड़ दिया। इस हमले का प्रतिकार करने तथा आततायियों को मुँहतोड़ उत्तर देने के लिए जिस साहित्यिक मोर्चे (कल्चरल फ्रण्ट) का गठन किया गया, उसके सक्रिय सदस्य थे–सर्वश्री दीनानाथ नादिम, नूर मुहम्मद रोशन, गुलाम अहमद फाजिल, नन्दलाल अम्बारदार, अलमस्त कश्मीरी, अर्जुनदेव मजबूर, प्रेमनाथ प्रेमी आदि। ये सभी कविहृदय रखते थे। सभी ने देश की स्वतन्त्रता, अखण्डता, मान-मर्यादा तथा धर्मनिरपेक्षता की रक्षा के हेतु ओजस्वी वाणी में दुश्मन को ललकारा। सभी का एक नारा था :

हमला आवर खबरदार
हम कश्मीरी हैं तैयार......।

नादिम साहब इस मोर्चे के अगुआ सिद्ध हुए। उनके प्रत्येक आह्वान ने जनता में नवीन स्फूर्त्ति एवं मनोबल का संचार किया। व्यापक जनजागरण उनका विश्वास था, विश्वमैत्री उनकी आस्था थी तथा मानवतावाद उनका सम्बल था :

पकुन छम
पकुन छम म्ये जमहूरिक्यन मशवरन प्यठ
नज़र म्ये छम कशीरिक्यन रहबरन प्यठ
तǀ बेयि काशिर्यन प्यठ
म्ये दुनिया छ मिलचा़रकिन कुन बनावुन
म्ये छम ताज़ यावुन
म्ये छुम ताज़ यावुन, म्ये छम ताज यावुन......।

अर्थात्, मुझे जमहूरियत की राहों पर आगे बढ़ना है, मेरी नजर कश्मीर के देशभक्तों पर टिकी हुई है। सारी दुनिया को विश्वमैत्री से मुझे एक बनाना है। मुझमें जोश-ए-जवानी है, जोश-ए-जवानी है, जोश-ए-जवानी है....।

---

*कश्मीरी के उपन्यास-साहित्य का संक्षिप्त परिचय इस निबन्ध के अन्त में परिशिष्ट के अन्तर्गत दिया गया है।—ले०

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नूर मुहम्मद रोशन ने नादिम के साथ स्वर-में-स्वर मिलाकर 'नये कश्मीर' के सपने अपनी कविता 'वतन आजाद थावुन छुम' में यों सँजोये :

वतन आज़ाद थावुन छुम
नोवुय कश्मीर बनावुन छुम
मुहब्बत बा'गरावुन छुम
नोवुय कश्मीर बनावुन छुम
म्ये आ'श आराम त्रावुन छुम
जंगुक मैदान बसावुन छुम
पनुन दुश्मन मिटावुन छुम
नोवुय कश्मीर बनावुन छुम
गुलामीहुन्द वे'हम त्रा'विथ
जवानीहुन्द यि दम था'विथ
पनुन तकदीर बनावुन छुम
नोवुय कश्मीर बनावुन छुम····।

अर्थात्, मुझे अपने वतन को आजाद करना है तथा एक नया कश्मीर बनाना है। ऐश-आराम छोड़कर जंग के लिए मोर्चा तैयार करना है। अपने दुश्मन को मुझे मिटा देना है तथा एक नया कश्मीर बनाना है। गुलामी की जंजीरों को तोड़ डालना है तथा अपनी जवानी के दम से अपनी तकदीर को सँवारना है....।

इसी प्रकार, फाज़िल की 'कदम-कदम' एवं 'कशीर'; नन्दलाल अम्बारदार की 'हिन्दोस्तान सोनुय' (हिन्दुस्तान हमारा); अलमस्त की 'वतन'; अर्जु'नदेव मजबूर की 'म्या'न शार' (मेरे शेर); प्रेमनाथ प्रेमी की लोकगीत-शैली में लिखी 'लड़ीशाह' आदि कविताएँ आधुनिक कश्मीरी कविता की राष्ट्रीय प्रगतिवादी प्रवृत्ति का निर्देश देती हैं।

सन् १९५३ ई० के आसपास से कश्मीर में राजनीतिक स्थिरता कायम हो गई। परिणाम-स्वरूप कवियों की विचारधारा में भी यथेष्ट परिवर्त्तन आ गया। अब कविता में 'ओज' का स्थान 'लालित्य' ने ले लिया तथा कवियों का ध्यान रचना के बाह्य सौन्दर्य की संवृद्धि में लग गया। इस वर्ग के कवियों में नादिम के अतिरिक्त रहमान राही, अमीन कालिम, गुलाम नबी फिराक, गुलाम रसूल सन्तोष, मुज़फ्फर आज़म, चमनलाल चमन आदि के नाम गिनाये जा सकते हैं।

प्रयोगवादी कवियों में नादिम अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। इनकी बहुचर्चित 'लखचुन' शीर्षक कविता आधुनिक कश्मीरी कविता की प्रयोगवादी प्रवृत्ति का जीवन्त उदाहरण है। मुक्त छन्द में लिखी इस कविता में कवि की पैनी कल्पना-शक्ति तथा सटीक बिम्ब-योजना का परिचय मिल जाता है। सुन्दरी के माथे के तिल को कवि ने जिन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हृदयग्राही उपमानों एवं बिम्बों के माध्यम से मूर्त्तता प्रदान की है, उनसे उसकी गहरा कलात्मक सूझबूझ का प्रमाण मिल जाता है :

लखचि छु लखचुन
ड्यककुय टिक जन
ताफ प्रज़लवुन
सिंगल दीपचि रानि पद्माने
प्रगाशन ड्यकि म्यूठ छु द्युतमुत
नूर जहाना हूर मिसाल
नत जन हिरनन कोलसरस कुन
वनि प्यठ नीमच़ छिप दिथ छाल....।

अर्थात्, उसके माथे का तिल ऐसा लग रहा है, मानों असीम प्रकाश सिमटकर एक ही बिन्दु पर जम गया हो। या फिर सिंहलद्वीप की रूपसी पद्मिनी को मानों अपरिमित तेज ने माथे पर चूम लिया हो। या फिर उसके केश-रूपी वन से एक मृग भागकर नयन-स्रोतों के बीच जमकर बैठ गया हो....।

कला का निखार रहमान राही की कविताओं में अधिक है। 'नौरोज़-ए-सबा' शीर्षक इनका काव्य-संकलन आधुनिक कश्मीरी-कविता की प्रयोगवादी प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करनेवाला प्रथम महत्त्वपूर्ण संकलन है। (इस संकलन पर कवि को साहित्य-अकादमी का सन् १९६१ ई० का पुरस्कार मिल चुका है।) इस संकलन की भूमिका में कवि ने स्वीकारा है कि 'कविता में नूतन प्रयोगों का समावेश करना अब एकदम जरूरी हो गया था। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए मैंने अपनी कविताएँ रची हैं। राही का शिल्प-विधान तथा उनकी अभिव्यक्ति-शैली परम्परा से एकदम हटती हुई है। 'पै छु ज़ुलमा ति वुज़ान' शीर्षक कविता में प्रयुक्त प्रतीक-संयोजना द्रष्टव्य है। इस कविता में एक ऐसी मनहूस एवं ठिठुरती काली रात का वर्णन है, जिस रात कवि को अपने चारों ओर मौत का-सा क्रूर एवं डरावना वातावरण लगता है :

शान्दं प्यठ कार फिरम सोन तं स्याह चारु ठ्यूठुम
डोख चोनिस सात द्युतुम माग थूपुम मंज़ सीनस
वुठ होखिम दारि न्यबर आस गछ़ान फिसराय
शीन थोस्य आस छेपन्येन जाय रटान दरज़न मंज़
सन्दूक त्य खंच़ गगर खाच़ त गंजीनस कुन
विंगजि प्यठ फेरन बदल ओस अवेज़ान ब्योरा
अछ मूरन दिथ म्ये लमेओव लेफि सर्द शानव प्येठ
ग्राय लंज कांगरि हन्द्रोम कोवख सूर खोरन
अथ्य अन्दर गोम कनन रातमोगल मो दोहो
दिल अगर साथ मे र्दियिहे ब वदन ऋखा दिमहा....

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अर्थात्, कल आधी रात को सहसा मेरे विचारों का धागा टूट गया। मैंने ज्यों ही तकिये पर से सिर ऊपर किया, तो सामने एक गहरा एवं सियाह गड्ढा दिखाई पड़ा। दीवार के साथ जैसे ही मैं पीठ लगाकर बैठ गया, तो माघ मास की सारी ठण्डक मेरे सीने में धँस गई। इसी बीच कोने में पड़े सन्दूक पर से एक चुहिया ने छलाँग मारी और अलमारी की ओर जाकर छिप गई। अलगनी पर 'फिरन' (चोले) के स्थान पर मुझे एक बिल्ली लटकती दिखाई दी। मैंन आँखें मलकर रज़ाई को अपने सर्द कन्धों पर डाल दिया। इतने में बाहर उल्लू का रुदन-स्वर सुनाई पड़ा और मेरी 'कांगड़ी', जो मेरे बिस्तर में थी, उलट गई तथा उसकी गर्म-गर्म राख मेरे पैरों के नीचे बिखर पड़ी। यदि मेरा दिल साथ देता, तो शायद मैं ज़ोर से रो पड़ता....।

अमीन कामिल, कश्मीरी के चौथे साहित्यकार हैं, जिन्हें साहित्य-अकादमी ने उनके काव्य-संकलन 'लर्व त प्रर्व' पर सन् १९६७ ई० का अकादमी-पुरस्कार प्रदान किया है। राही की तरह कामिल ने भी दावा किया है कि उनके इस संकलन में सभी कविताएँ परम्परा से हटकर नूतन प्रयोगों का निर्देश करती हैं। स्वयं कवि ने संकलन की भूमिका में एक स्थान पर लिखा है: 'ये कविताएँ कथ्य तथा शिल्प की दृष्टि से नवीनता लिये हुए हैं। इनमें नव्य प्रयोगात्मक शैली एवं कथ्य का सन्निवेश है। इस प्रयोग का चलन हमारी कविता में अभी-अभी हुआ है। कामिल साहब का उक्त कथन निःसन्देह पर्याप्त मात्रा में सही है। 'लर्व त प्रर्व' में संकलित प्रायः सभी कविताएँ कश्मीरी-काव्य शैली में नूतन प्रयोगों का आभास कराती है। 'शिह्जि बून्य', 'करामाथ', 'तलाश', 'आदम छु ज्यनय', 'पगाह कोर गछ़ख' आदि कविताएँ कथ्य की दृष्टि से काफी सुन्दर बन पड़ी हैं। 'सुबह', 'तारुक प्रज़लेव', 'ज़ून', 'नीलनाग' आदि कविताएँ उत्कृष्ट शिल्प की सूचना देती हैं। इन कविताओं में प्रयुक्त बिम्ब एवं उपमान पारम्परिक होते हुए भी आधुनिकता का संस्पर्श लिये हैं। 'सुबह' शीर्षक कविता से एक पद्यांश प्रस्तुत है:

गाश तारुख ज़िन्दगियि हंज़ मायि ह्यथ बतबान द्राव
राच़ हुन्द बोछि ताव चोल संगरन बिचारन गाश आव
सुबह फोल ज़न गाम्य यावन नाल्य छन दोबिद्राव पोछ
या अकिस अनि माजि यिवनुक गाशदार अच्छ़गाश ज़ाव
तारकन हंजि नाव सारेय द्रायि कथतान्य गाठ कुन
संदर खोन खाली सपज़ ज़न ओस सोरुय हाव हाव
पूरकिन्य ह्योत नुर बुथ्य कंम्यताम ध्युन वोन आलमस
आसमान वोशलेव जन नोशि वारिविक ह्यथ आयि प्याव....।

अर्थात्, नये जीवन की आस लेकर सुबह का तारा हाथ में भोजन-पात्र (टिफिन-कैरियर) लिये घर से निकल पड़ा। रात-भर की प्रतीक्षा के बाद पर्वत-शिखरों पर धीरे-धीरे प्रकाश फैलने लगा। उधर सारा गाँव प्रभात के आगमन पर आलोकित हो उठा, मानों उसने एक लम्बा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एवं धवल चोला पहन लिया हो या एक अन्धी माँ को मानों पुत्र-रूपी नेत्र-प्रकाश की प्राप्ति हो गई हो। आकाश-समुद्र में ताराओं की नौकाएँ लुप्त हो गई और वे न जाने किस घाट की ओर प्रस्थान कर गईं। पूर्वांचल से एक घने प्रकाशपुंज का उदय हुआ और वह सकल संसार को झाँकने लगा। आसमान पर लाली छा गई, मानों वधू के लिए ससुरालवाले 'प्याव' * लेकर आये हों....।

कामिल की मुक्त छन्द में लिखी एक अन्य प्रयोगवादी कविता 'रेवख' से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जाती है। इस कविता में कवि की छन्दोमुक्त काव्यशैली द्रष्टव्य है :

जॅर त कंज खामोश राथ
ठस ठस ठस
कथ न बाथ
त्रन बिज्येन हुन्द बेसबर अख इन्जार
'यीच् मस्ती'
तड-तडाख
'कुस सा छुव--?'
सुय येमिस योदवय चे तस आसि, ज़माना अख सपुद
नाद बूज़िय वाद ह्यु अन्दिरिय कर्योथ
यावनंच तेह येलि हसी सारिय यि बर पानय खुली
ज़ोनमुत सोरुय मशी, येली ज़ानहिन्दिस खुलूसस अन्दर अचख
ज़ान वोज़ख ज़ान डेशख ज़ानय बेज़ान बनख
कथ न वाथ
ठस ठस ठस
तड-तडाख
जॅर त कंज खामोश राथ

बहरी और गूँगी खामोश रात
खट खट खट
न बात न 'चीत'
तीन पलों का बेसब्र इन्तजार
'इतनी मस्ती'
तड़-तड़ाक
'कौन हैं ?
वही, यदि तुम्हें याद हों, ज़माना एक बीत गया

* 'प्याव' में स्थानीय बिम्ब है। प्रसव के कुछ समय पूर्व ससरालवाले गर्भवती वधू के लिए आभूषण, वस्त्र, नकदी आदि उसके पीहर भेजते हैं। इस सामाजिक अनुष्ठान को 'प्याव' कहते हैं। पीहर में वधू का, उक्त सामग्री को देखकर लज्जारुण हो जाना स्वाभाविक है।—ले०

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आवाज़ सुन मेरी मन में कुढ़ा था तू
यौवन का अहं जब तेरा खण्डित होगा, यह कपाट भी अपने-आप खुलेगा
तब तेरा अहं सब कुछ भूल जायगा
और तू उसी में खो जायगा, उसी में मिल जायगा
बात न 'चीत'
खट खट खट
तड़-तड़ाक
बहरी और गूँगी खामोश रात।

इसी प्रकार, गुलाम नबी फिराक की 'बागस मंज़', 'तंम्य दोपनम' आदि; सन्तोष की 'राथ' एवं 'त्रॆशना'; मुज़फर आज़म की 'आवलुन' एवं 'कलॆवाल' तथा चमनलाल चमन की 'गुमॆ गयि पॆत्य', 'म्ये मा लॆजमॆच् नजर' आदि कविताएँ कश्मीरी-कविता की विकसित प्रयोगवादी प्रवृत्ति का परिचय देती हैं। इस प्रवृत्ति की संवृद्धि में जिन अन्य कवियों ने योगदान दिया है या दे रहे हैं, उनके नाम हैं—सर्वश्री हामिदी कश्मीरी, गुलाम नबी खयाल, मोतीलाल नाज, मक्खनलाल बेकस, वासुदेव रेह, राधेनाथ मस्सरत आदि।

नव्य प्रवृत्तियाँ : नाटक

कश्मीरी नाटक के विकास की परम्परा में कश्मीर के प्रसिद्ध लोक-नाट्य 'भांडपाॅथर' का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। 'भांडपाॅथर' संस्कृत के दो शब्दों 'भाण' और 'पात्र' के योग से बना है, जिसका अर्थ है हास्य-व्यंग्य-प्रधान हाव-भाव एवं अन्य प्रकार की शारीरिक चेष्टाओं से किसी स्थिति का अभिनय करना। अभिनय करनेवाले भांड कहलाते, जो अपनी प्रभावपूर्ण वेशभूषा, भाव-भंगिमा, कटाक्ष आदि से किसी भी सामाजिक, धार्मिक अथवा राजनीतिक विषय को मनोरंजक ढंग से जनता के सामने प्रस्तुत करते। मुगलकाल में यह कला अपने चरमोत्कर्ष पर थी, किन्तु अफ़गान और सिक्ख-शासनकाल में यह कला पूर्णतया नष्ट हो गई। सन् १८७७ ई० के भयंकर दुर्भिक्ष के कारण इस कला के लगभग सभी कलाकार काल-कवलित हो गये। 'सोयबुग', 'वाहथोर' और 'अकिनगोम' गाँवों में भी बहुत कम कलाकार जीवित रह पाये। ये तीनों गाँव इस कला के प्रधान केन्द्र थे। जो बचे रहे, उन्होंने तथा उनकी बाद की पीढ़ियों ने इस नाट्यकला को छोड़ दिया। कालान्तर में इस कला की विशृंखलित कड़ियों को पुनः जोड़ने का प्रयास किया गया और वर्त्तमान कश्मीरी-रंगमंच एवं नाटक का विकास हुआ।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में पारसी थिएटर कम्पनी को आगा हश्र, बेताब तथा मास्टर रहमत के नाटकों ने एक नया जीवन प्रदान किया था। कश्मीर के कई कलाकारों को इन नाटकों के देखने का मौका मिला। उन्होंने इन नाटकों से प्रभावित होकर कश्मीर में भी एक नाटक-कम्पनी खोलने का संकल्प किया। श्रीनगर में गावकदल के निकट झेलम के किनारे एक व्यावसायिक नाटक-कम्पनी खोली गई। (कम्पनी ने स्त्री-पात्रों का अभिनय करने के लिए कुछ अभिनेत्रियाँ बाहर से मँगवाइ।) यह कम्पनी अधिक समय

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तक न चल सकी; क्योंकि जनता की रुचि अभी इतनी विकसित एवं परिष्कृत नहीं हुई थी कि वह नाटक देखने के लिए पाँच-चार आने खरचती। आर्थिक संकट के कारण इस कम्पनी को टूटना पड़ा। अपने कार्यकाल में इस कम्पनी ने जो नाटक मंच पर प्रस्तुत किये, वे प्रायः सभी उर्दू में लिखे गये थे। यह कम्पनी यद्यपि ज्यादा समय तक न चल सकी, तथापि कश्मीरी-रंगमंच एवं नाटक के विकास में उसने एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस कम्पनी के भरसक प्रयत्नों की बदौलत कश्मीरी-रंगमंच को सर्वश्री रामकृष्ण, अमरनाथ हाण्डा, बाबू किशनदास, वेदलाल दर, जगन्नाथ साकी, स्वामीजी जैसे प्रतिभाशाली कलाकार मिले।

कश्मीरी का प्रथम साहित्यिक नाटक 'सत्य॑च काहवट' सन् १९२९ ई० में लिखा गया। इसके लेखक थे श्रीनन्दलाल कौल। 'सत्य॑च काहवट' (सत्य की कसौटी) लिखकर कौल साहब ने यह सिद्ध कर दिया कि कश्मीरी में भी सफल नाटक लिखे जा सकते हैं। सन् १९२९ से सन् १९३२ ई० तक यह नाटक अनेक बार श्रीनगर के 'रघुनाथ-मन्दिर-स्टेज' पर खेला गया। यह नाटक इतना लोकप्रिय हुआ कि इसके गीत एवं संवाद बच्चे-बच्चे के कण्ठ पर सध गये। इस नाटक का कथानक सत्यवादी हरिश्चन्द्र और उनकी पत्नी तारामती के जीवन-संघर्ष पर आधारित था। नाटक के प्रमुख पात्र थे--राजा हरिश्चन्द्र, तारामती, रोहित, विश्वामित्र तथा विदूषक नक्षत्र। नक्षत्र के कण्ठ से गवाया हास्यगीत 'रंगस गयि बेरंगी. . .' अपने समय में खूब लोकप्रिय हुआ था। जहाँतक इस नाटक की टेकनीक का प्रश्न है, यह नाटक प्रमुखतया संस्कृत-नाट्यकला से प्रभावित था। इसमें भी प्रारम्भ में सूत्रधार मंच पर आकर नाटक की भूमिका पर प्रकाश डालता तथा त्रासिक बिन्दुओं पर विदूषक सहसा दर्शकगण का मनोरंजन करने उपस्थित हो जाता। कथोपकथनों में काव्यात्मकता का भी पुट विशेष मात्रा में था। इस नाटक के प्रथम दृश्य से एक अंश देखिए :

इन्द्र : वो॑श त्रा॑विथ हे त्रिभुवननाथ्।

सीवक : महाराज, नाशि रो॑स आ॑सिन तुहुन्द राज। शो॑त्रन गछ़ुन नाश। असि रूज़िन तुहं‌ज़ आश। वनुन छु कारण अज कवह छु मन वो॑दास।

इन्द्र : सेवको, तो॑हि क्याह वनोव कारण, मन छु म्ये स्यठा थारन।

वशिष्ठ : हे राज़, च॑ छुख वो॑श त॑ वो॑श त्रावान, मनुक प्रयोजन को॑न छुख बावान।

इन्द्र : महर्षिजी, अज पेयि म्ये च॑तस अख कथा। येम केंह थोवनम न॑ सामरथा। मन छुम गोमुत स्यठा व्याकुल। आराम छुम न बिल्कुल। राज़ुक ति छुम यिवान रोज़ुन दुलमुल।

विश्वामित्र : च॑ क्याहजि छुख शक करान, कम कथ॑ छुख मनस मंज़ सोरान। वन च॑ क्याह शूक छुय मनस मंज़। ब॑ कर॑ वुन्य कासनुक संज़. . .।

इन्द्र : (निःश्वास छोड़कर) हे त्रिभुवननाथ !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सेवक : महाराज, नाश-रहित हो आपका राज। शत्रुओं का हो नाश। हमें तो है आपकी ही आस। मन आपका आज क्यों है उदास ?

इन्द्र : सेवको, बताऊँ क्या तुम को कारण, आज काँप रहा है मेरा मन।

वशिष्ठजी : हे राजन्, छोड़ रहे हैं आप बार-बार निःश्वास। बात मन की क्यों नहीं कहते, करके हम पर विश्वास।

इन्द्र : महर्षिजी, बात मुझे एक आ रही है याद, जिसने खड़ा किया है यह विवाद। छूट रहा आराम भी, राजपाट का रहना भी लग रहा ढुलमुल—यह कह रहा हूँ निर्विवाद।

विश्वामित्र : ऐसी बातें न करें आप, इनसे बढ़ेगा केवल हृदय का ताप। शोक कौन-सा है समाया, मैं अभी किये देता हूँ उसका सफाया।

नन्दलाल कौल ने और भी कुछ नाटक लिखे, जिनमें उल्लखेनीय हैं—'सावित्री-सत्यवान', 'कृष्ण-सुदामा', 'रामराज' आदि। ये सभी नाटक मंच पर खेले गये।

नन्दलाल कौल के पश्चात् कश्मीरी नाटककारों की परम्परा में सर्वश्री गुलाम नबी सोज़ (सन् १९१६ से १९४१ ई०), ताराचन्द बिसमिल (सन् १९०४ से १९४८ ई०) तथा नीलकण्ठ शर्मा (सन् १८८८ ई०) के नाम उल्लेखनीय हैं। इन तीनों ने नन्दलाल कौल की ही नाट्यकला का अनुसरण किया। गुलाम नबी सोज ने 'लैला-मजनू' एवं 'शीरीं-खुसरो' शीर्षक दो संक्षिप्त नाटक लिखे। ये दोनों नाटक राजपाल ग्रामोफोन कम्पनी की ओर से रिकार्ड भी किये गये। जनता ग्रामोफोन पर इन नाटकों को सुनकर आनन्द लेती थी। ताराचन्द बिसमिल ने नन्दलाल कौल के 'सत्यॅच काहवट' से प्रेरित होकर सत्यवादी हरिश्चन्द्र के जीवन-वृत्त पर एक नया नाटक 'सतॅच वथ' (सत्य का मार्ग) लिखा। (यह नाटक सन् १९३८ ई० में हब्बाकदल, श्रीनगर के प्रकाशक श्रीअली-मुहम्मद ने प्रकाशित किया था।) इसके अलावा बिसमिल ने 'अकनन्दुन', 'रामावतार', 'प्रेमॅच काहवट' आदि कुछ और छोटे-मोटे नाटक लिखे। पं० नीलकण्ठ शर्मा ने 'बिलावा-मंगल' तथा 'स्वप्नवासवदत्ता' शीर्षक दो नाटक लिखे। 'स्वप्नवासवदत्ता' भास के प्रसिद्ध संस्कृत-नाटक का स्वतन्त्र रूपान्तर था।

सन् १९३८ ई० में मोहीउद्दीन हाजिनी का नाटक 'ग्रीस्यसुन्द गरॅ' प्रकाशित हुआ। टेकनीक की दृष्टि से यह नया प्रयोग था। संवाद संक्षिप्त तथा प्रवाहशील थे। उनमें पूर्ववर्त्ती नाटकों की तरह काव्यात्मकता का पुट न था। गीत-संयोजना भी नहीं के बराबर थी। वर्ण्य विषय भी एकदम सामयिक एतथा यथार्थता लिये हुए था। इसमें जागीरदारी निजाम में दब-पिस रहे एक गरीब किसान की दुर्दशा का चित्रण किया गया था। यह नाटक दो पत्रिकाओं 'प्रताप' एवं 'गुलरेज़' में किस्तों में छपा था।

सन् १९४२ से १९४७ ई० तक की छह-वर्षीय कालावधि ने कश्मीरी-रंगमंच एवं नाटक-साहित्य को एक नया मोड़ दिया। कश्मीरी-कलाकारों ने पहली बार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शिबन कृष्ण रैणा
एम. ए; पी. एच. डी.
हिन्दी विभाग

राजकीय महाविद्यालय

दिनाङ्क 15/12/71 १९

प्रिय महोदय,

नमस्कार। आपके दो पत्र यथासमय मिले। दोनों का उत्तर मैंने दे दिया था।

जनवरी अंक के लिये पाण्डुलिपि की अगली किश्त भिजवा रहा हूँ। पहली किश्त के कुछ पृष्ठ आपके पास हैं- इस किश्त के १२ पृष्ठों के साथ ही १६ पृष्ठों की सामग्री हो जायेगी। इधर काफ़ी व्यस्त रहा, श्रीनगर पर हुये हाल के पाकिस्तानी हमलों ने एकदम निष्क्रिय-सा बना दिया। मेरे परिवार के सभी सदस्य कश्मीर में ही रहते हैं। मेरी परेशानी का अन्दाज़ आप बखूबी लगा सकते हैं।

मैं विगत मास की १७-१८ तारीख़ को पटना में था। वहाँ पर मुझे निबन्धपाठ करना था। मैंने बहुत चाहा कि लखनऊ भी होता आऊं पर समय निकाल न पाया। अपने निबन्ध की एक प्रति भिजवा रहा हूँ। प्रतिक्रिया भेजें।

भवदीय,

B Raina

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सेवक : महाराज, नाश-रहित हो ग्रापका राज। शत्रुग्रों का हो नाश। हमें तो है ग्रापकी ही ग्रास। मन ग्रापका ग्राज क्यों है उदास?

इन्द्र : सेवको, बताऊँ क्या तुम को कारण, ग्राज काँप रहा है मेरा मन।

वशिष्ठजी : हे राजन्, छोड़ रहे हैं ग्राप बार-बार निःश्वास। बात मन की क्यों नहीं कहते, करके हम पर विश्वास।

इन्द्र : महर्षिजी, बात मुझे एक ग्रा रही है याद, जिसने खड़ा किया है यह विवाद। छूट रहा ग्राराम भी, राजपाट का रहना भी लग रहा ढुलमुल—यह कह रहा हूँ निर्विवाद।

विश्वामित्र : ऐसी बातें न करें ग्राप, इनसे बढ़ेगा केवल हृदय का ताप। शोक कौन-सा है समाया, मैं ग्रभी किये देता हूँ उसका सफाया।

नन्दलाल कौल ने ग्रौर भी कुछ नाटक लिखे, जिनमें उल्लखेनीय हैं—'सावित्री-सत्यवान', 'कृष्ण-सुदामा', 'रामराज' ग्रादि। ये सभी नाटक मंच पर खेले गये।

नन्दलाल कौल के पश्चात् कश्मीरी नाटककारों की परम्परा में सर्वश्री गुलाम नबी सोज़ (सन् १९१६ से १९४१ ई०), ताराचन्द बिसमिल (सन् १९०४ से १९४८ ई०) तथा नीलकण्ठ शर्मा (सन् १८८८ ई०) के नाम उल्लेखनीय हैं। इन तीनों ने नन्दलाल कौल की ही नाट्यकला का ग्रनुसरण किया। गुलाम नबी सोज़ ने 'लैला-मजनू' एवं 'शीरीं-खुसरो' शीर्षक दो संक्षिप्त नाटक लिखे। ये दोनों नाटक राजपाल ग्रामोफोन कम्पनी की ग्रोर से रिकार्ड भी किये गये। जनता ग्रामोफोन पर इन नाटकों को सुनकर ग्रानन्द लेती थी। ताराचन्द बिसमिल ने नन्दलाल कौल के 'सत्यॅच काहवट' से प्रेरित होकर सत्यवादी हरिश्चन्द्र के जीवन-वृत्त पर एक नया नाटक 'सतॅच वथ' (सत्य का मार्ग) लिखा। (यह नाटक सन् १९३८ ई० में हब्बाकदल, श्रीनगर के प्रकाशक श्रीग्रली-मुहम्मद ने प्रकाशित किया था।) इसके ग्रलावा बिसमिल ने 'ग्रकनन्दुन', 'रामावतार', 'प्रेमॅच काहवट' ग्रादि कुछ ग्रौर छोटे-मोटे नाटक लिखे। पं० नीलकण्ठ शर्मा ने 'बिलावा-मंगल' तथा 'स्वप्नवासवदत्ता' शीर्षक दो नाटक लिखे। 'स्वप्नवासवदत्ता' भास के प्रसिद्ध संस्कृत-नाटक का स्वतन्त्र रूपान्तर था।

सन् १९३८ ई० में मोहीउद्दीन हाजिनी का नाटक 'ग्रीस्यसुन्द गरॅ' प्रकाशित हुग्रा। टेकनीक की दृष्टि से यह नया प्रयोग था। संवाद संक्षिप्त तथा प्रवाहशील थे। उनमें पूर्ववर्त्ती नाटकों की तरह काव्यात्मकता का पुट न था। गीत-संयोजना भी नहीं के बराबर थी। वर्ण्य विषय भी एकदम सामयिक एतथा यथार्थता लिये हुए था। इसमें जागीरदारी निजाम में दब-पिस रहे एक गरीब किसान की दुर्दशा का चित्रण किया गया था। यह नाटक दो पत्रिकाग्रों 'प्रताप' एवं 'गुलरेज़' में किस्तों में छपा था।

सन् १९४२ से १९४७ ई० तक की छह-वर्षीय कालावधि ने कश्मीरी-रंगमंच एवं नाटक-साहित्य को एक नया मोड़ दिया। कश्मीरी-कलाकारों ने पहली बार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मिलकर इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया कि इस दूरस्थ प्रदेश में भी 'इण्डियन पीपुल्ज थिएटर ऑर्गनाइज़ेशन', जो उस समय देश में कार्यरत थी, की एक शाखा खुलनी चाहिए, ताकि कलाकारों को अपनी कला का प्रदर्शन करने के लिए समुचित अवसर मिल सके। उन्हीं दिनों उक्त नाट्य-संस्थान के प्रमुख कार्यकर्त्ता प्रसिद्ध अभिनेता श्रीबलराज साहनी कश्मीर आये और स्थानीय कलाकारों से कश्मीर में 'इण्डियन पीपुल्ज थिएटर ऑर्गनाइज़ेशन' की शाखा खोलने की सम्भावनाओं पर विचार-विमर्श किया। प्रदेश-सरकार चूँकि ऐसे संगठनों के विरुद्ध थी, इसलिए निश्चित यह हुआ कि इस नाट्य-संस्थान की शाखा खोलने से पूर्व एक ऐसा नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत किया जाय, जो जनता में देशप्रेम की भावना को जगा सके तथा उसमें नाटक के प्रति रुचि उत्पन्न करे और बाद में एक नाटक-मण्डली गठित की जाय, जिसका नाम 'आइ० पी० टी० ओ०' के स्थान पर कुछ और रखा जाय। नाटक के लिए आलेख तैयार करने का काम प्रसिद्ध कश्मीरी-कथाकार स्वर्गीय प्रेमनाथ परदेसी को सौंपा गया। परदेसीजी ने सन् १९४५ ई० में 'बर्तहर' शीर्षक से एक नाटक तैयार किया। इस नाटक में परदेसीजी ने प्रदेश की खाद्य-समस्या तथा भुखमरी का चित्रण किया था। प्रदेश-सरकार से जब इस नाटक को मंच पर खेलने की इजाज़त माँगी गई, तब उस समय के गवर्नर महाराजकृष्ण दर ने यह कहकर इसपर रोक लगा दी कि इस नाटक में सरकार-विरोधी तत्त्वों को उभारा गया है। सरकार के विरुद्ध आवाज उठाई गई, किन्तु उस आवाज को बुरी तरह से कुचला गया और इस काररवाई में 'बर्तहर' नाटक का आलेख भी सरकार ने जब्त कर लिया। इतना होते हुए भी कलाकारों का उत्साह भंग न हुआ। वे कश्मीरी-रंगमंच एवं नाटक को एक व्यवस्थित रूप देने के लिए कटिबद्ध रहे। इसी दौरान 'श्रीप्रताप ड्रामा क्लब', 'नेशनल ड्रामा क्लब' तथा 'सुधार-समिति ड्रामा क्लब' नाम से तीन नाट्य-संस्थाएँ स्थापित हो गई। इन तीनों संस्थाओं को श्रीनगर के युवा-कलाकार चलाते थे। इनमें 'सुधार-समिति क्लब' द्वारा प्रस्तुत 'विधवा' नाटक काफी लोकप्रिय हुआ। इस नाटक में एक विधवा के दारुण जीवन की मर्मस्पर्शी कथा कही गई थी। इस नाटक के गीतों की धुनें कश्मीर के प्रसिद्ध संगीतकार श्रीमोहन लाल ऐमा ने तैयार की थी।

सन् १९४७ ई० में कबाइली आक्रमण का साहित्यिक फ्रण्ट से प्रतिकार करने के लिए जहाँ कवियों ने अपनी आवाज़ बुलन्द की, वहाँ नाटककारों ने भी समाज के प्रति अपने दायित्व को निभाने में पूर्ण तत्परता दिखाई। इस काल में जो भी नाटक लिखे गये, सभी राष्ट्रीय संचेतना से ओतप्रोत प्रगतिवादी प्रवृति से युक्त थे। आततायियों को मुँह-तोड़ उत्तर देने के लिए 'कश्मीर यह है' नामक एक नाटक लिखा गया और मंच पर खेला गया। यद्यपि यह नाटक उर्दू में लिखा गया था, किन्तु इसके गीत कश्मीरी में लिखे गये थे। इसके बाद प्रेमनाथ परदेसी का एक अन्य नाटक 'शहीद-शेरवानी' मंच पर खेला गया। बारामूला-निवासी शेरवानी ने किस प्रकार मातृभूमि की रक्षा के लिए कबाइलियों की चाल को विफल बनाया तथा अन्त में अपनी जान दे दी—इस नाटक का वर्ण्य विषय था। इस नाटक के लिए गीत कविवर महजूर ने लिखे थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् कश्मीरी रंगमंच एवं नाटक-साहित्य उत्तरोत्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर होने लगा। 'कल्चरल फ्रण्ट' के सतत प्रयासों द्वारा कश्मीरी नाटकों का प्रचार-प्रसार अब ग्रामीण क्षेत्रों में भी बढ़ गया। श्रमिक एवं कृषक-वर्ग में नाटक के प्रति रुचि जगाने के उद्देश्य से नाटककारों ने छोटे-छोटे प्रभावपूर्ण नाटक लिखे, जिनका कथानक उनकी विभिन्न समस्याओं पर आधारित था। इस प्रसंग में 'तीन बट्टा चार' और 'डालर साहब' नाटकों के नाम उल्लेखनीय हैं। ये दोनों नाटक अपने समय में काफी लोकप्रिय हुए। 'तीन बट्टा चार' नाटक का मूल सन्देश यह था कि उपज का एक-चौथाई हिस्सा जमीन्दार को मिलना चाहिए और तीन-चौथाई हिस्सा काश्तकार को। इस प्रगतिवादी विचारधारा को प्रदेश-सरकार भी व्यापक रूप देना चाहती थी, अतः 'तीन बट्टा चार' नाटक ने इसके लिए अनुकूल पृष्ठभूमि तैयार की। 'डालर साहब' हाकिम-वर्ग द्वारा अधिक मुनाफा कमाने के लिए यन्त्रीकरण पर व्यंग्य था। उक्त दोनों नाटक सर्वश्री सोमनाथ जुत्शी, नूर मुहम्मद रोशन, पुष्कर भान तथा प्राणकिशोर के सामूहिक परिश्रम के परिणाम थे।

'कल्चरल फ्रण्ट' के टूट जाने पर 'कल्चरल काँगरेस' तथा बाद में 'ऑल स्टेट कल्चरल कान्फ्रेन्स' नाम की साहित्यिक संस्थाएँ बनीं। इन संस्थाओं का लक्ष्य कश्मीरी गद्य का समुचित विकास करना रहा। कश्मीरी-नाट्यकला में नूतन प्रयोग करना भी इनका ध्येय रहा। सन् १९५३ ई० में पहली बार एक ओपेरा गीत-नाट्य 'बोम्बर येम्बर जल' स्टेज पर प्रस्तुत किया गया। इस ओपेरा के लेखक थे कश्मीर के प्रसिद्ध कवि श्रीदीनानाथ नादिम। प्रगतिवादी दृष्टिकोण पर आधारित इस प्रतीकात्मक ओपेरा में असत्य के ऊपर सत्य की, अन्याय के ऊपर न्याय की तथा सामन्तशाही के ऊपर लोकतन्त्र की विजय दिखाई गई थी। पतझर और प्रभंजन इस ओपेरा में सामन्तशाही के प्रतीक थे, जो हरी-भरी फुलवाड़ी के भोले प्राणियों—भौंरे, गुललाला, टेकबटनी (फूलों के नाम) का जीना दूभर कर देते हैं। अन्त में, पतझर और प्रभंजन को हार माननी पड़ती है। सन् १९५४-५५ ई० में जब रूसी नेता बुलगानिन, ख्रुश्चेफ आदि कश्मीर आये, तब कश्मीर के प्रसिद्ध कला-निदेशक श्रीप्राण-किशोर ने इस ओपेरा को पूर्ण रंगमंचीय सज्जा के साथ अतिथियों के समक्ष प्रस्तुत किया। अतिथिगण इस ओपेरा की टेकनीक से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने बाद में इसको रूसी-अनुवाद के साथ अपने देश में भी अभिनीत कराया।

सन् १९५६ ई० में पहली बार सरकार की ओर से 'जश्न-कश्मीर' मनाने की योजना कार्यान्वित हुई। इसके अन्तर्गत विभिन्न साहित्यिक कार्यक्रम सम्पन्न हुए। नाटक-प्रतियोगिताएँ इन कार्यक्रमों का विशेष आकर्षण था। सन् १९५६ ई० के 'जश्न-कश्मीर' में जो नाटक मंच पर प्रस्तुत किये गये, उनमें श्रीदीनानाथ नादिम एवं नूर मुहम्मद रोशन का ओपेरा 'हीमाल नागराय', 'नीकी तॅ बदी', अमीन कामिल का 'हब्बाखातून' आदि उल्लेखनीय हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सन् १९६५ ई० के बाद कश्मीरी-नाटक-साहित्य में उल्लेखनीय परिवर्त्तन मिलते हैं। मौलिक नाटकों की सर्जना के साथ-साथ अब अँगरेजी, बँगला आदि नाटकों के रूपान्तर भी सफलतापूर्वक किये जाने लगे। सन् १९५६ ई० के बाद जो मौलिक नाटक रचे गये, उनमें उल्लेखनीय हैं– अली मुहम्मद लोन का 'विज़ छि सा'न्य', रोशन का 'चोरबाज़ार', अमीन कामिल का 'पगाह छु गाशदार', अख्तर मोहीउद्दीन का 'नस्तिहुन्द सवाल' और 'शीश त' संगिस्तान', राधाकृष्ण ब्रारू का 'याहू', सोमनाथ ज़ुत्शी का 'अमानत', सुदामाजी का 'मिलचार' आदि। रूपान्तरित नाटकों में 'का'रवानी', 'मालिनी', 'चाण्डाल कट', 'वोज़िल्य गोलाब', 'राज़ त' रा'न्य', 'डाकघर' आदि (सभी टैगोर के नाटकों के रूपान्तर) तथा 'वाइल्ड डक' एवं 'घोस्ट्स' (इब्सन के नाटकों के रूपान्तर) उल्लेखनीय हैं। मौलिक नाटकों की सर्जन-प्रक्रिया के पीछे मानव-चरित्र की विभिन्न दिशाओं, आकांक्षाओं, कमजोरियों, लाचारियों आदि का चित्रण करना नाटककारों का मुख्य ध्येय रहा। इस सबके पीछे उनकी मनोवैज्ञानिक दृष्टि ही प्रबल रही।

कश्मीरी-रंगमंच एवं नाटक के इतिहास पर विचार करते समय 'रेडियो कश्मीर' (आकाशवाणी के श्रीनगर-केन्द्र) के बहुमूल्य योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। यह प्रसारण-केन्द्र सन् १९४८ ई० से कश्मीरी-साहित्य, विशेषकर, कश्मीरी-गद्य-साहित्य की अथक सेवा कर रहा है। कश्मीरी-साहित्य को जनता तक पहुँचाने तथा उसमें कश्मीरी-नाटक, एकांकी, कहानी आदि के प्रति रुचि एवं निष्ठा जगाने में इस केन्द्र ने आशातीत कार्य किया है। नाटक के क्षेत्र में इसका योगदान सर्वोपरि है। सन् १९७० ई० तक इस केन्द्र से ५०० से ऊपर कश्मीरी-नाटक प्रसारित हो चुके थे। कुछ नाटक इतने लोकप्रिय हुए कि उन्हें दोबारा प्रसारित किया गया। इन नाटकों में उल्लेखनीय हैं—अली मुहम्मद लोन के 'अगर आश सोरि', 'महान' और 'ता'ज्य ब'ट्य कान'; परदेसी का 'कु'द गोजवोर', कामिल का 'द्यदरा'न्य'; सोमनाथ ज़ुत्शी का विजवाव', रोशन का 'मिसकीन बुड'; सूफी गुलाम मुहम्मद का 'व्छे'कठ' आदि। कुछ ओपेरा भी प्रसारित हुए, जिनमें उल्लेखनीय हैं–मुज़्ज़फर आजम का 'स'न्य केस'र', अमीन कामिल का 'गुलरेज़' आदि।

नव्य प्रवृत्तियाँ : कहानी

कश्मीरी-कहानी का जीवन-इतिहास ज्यादा पुराना नहीं है। आज से लगभग २१ वर्ष पूर्व 'कल्चरल काँगरेस' के तत्त्वावधान में हुई २५ फरवरी, १९५० ई० की साहित्यिक गोष्ठी में पहली कश्मीरी-कहानी 'येलि फो'ल गाश' पढ़ी गई। इसके लेखक थे श्रीसोमनाथ ज़ुत्शी। इसके बाद 'कल्चरल काँगरेस' के ही अन्य प्रगतिशील सदस्य-साहित्यकारों ने कश्मीरी-कहानी को अपना बहुमूल्य सहयोग देकर संवर्द्धित किया। इस साहित्यकार-मण्डली में सोमनाथ ज़ुत्शी के अलावा सर्वश्री अब्दुल अज़ीज़ हारून, दीनानाथ नादिम, नूर मुहम्मद रोशन, रहमान राही, मिर्ज़ा आरिफ आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। नादिम की 'जवाबी कार्ड' एवं 'शीन' प्यतो-प्यतो', रोशन की 'नेहग'ट', हारून की 'ज़ून' एवं 'भ्रम', राही की 'येलि सु थन प्यव', आरिफ़ की 'ज़य' आदि कहानियाँ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के ही किन्हीं तथाकथित चरित्रवान् 'बँगलेवालों' एवं 'कारवालों' की वासना को सन्तुष्ट करने के लिए मजबूर हो जाती हैं। शीला न जाने कैसे इस चक्कर में पहले से ही फँस चुकी होती है और वह अपनी भोली (?) सहेली ज़ुबैदा को भी छल से उस 'अड्डे' पर ले जाकर, उसे वहाँ भेंट करने में सफल हो जाती है। कहानी का नाटकीय अन्त शीला और ज़ुबैदा के इस सम्भाषण से होता है :

> शीलन को़र क्याहताम ज़ुरत ह्यु़ तं मज़ामत सान वछ़ ज़ुबेदस क़ुन—'म्ये ह्य दीज़ि मा़फी। च़ बुछ़त वन्य म्ये कहिन्दि खा़तरं प्यव यि करुन। ब आ़सस स्यठा बेबस तं मजबूर।'
> 'चा़न्य मजबूरी छि बरहक़'—ज़ुबेदा सपंज़ संजीदं तं वोननस—'वन्य गव जि च़ति अमिस कांह नव डा़ल्य गुज़ा़रंथ नं। बं छस अ़न्य मारवातलन च़ ब्रोंह ज़ालस ला़जमच़। म्ये गयाव फ़ुट कुनि नविस तावनस मा लजिस।'

अर्थात्, शीला ने तनिक साहस बटोरकर पश्चात्ताप करते हुए ज़ुबैदा से कहा—'मुझे माफ करना बहिन ! तुमने खुद देख लिया होगा कि यह सब मुझे क्यों और किन हालात में करना पड़ा। मैं विवश और मजबूर थी।' 'तुम्हारी मजबूरी उचित ही थी'—ज़ुबैदा ने संजीदगी से जवाब दिया—"हाँ, एक बात है। तुमने भी कोई नई चीज़ 'उसे' भेंट नहीं की। उस दुराचारी ने तो मुझे बहुत पहले अपने जाल में फँसा लिया था। मैं तो केवल यह सोच रही थी कि कहीं किसी दूसरी मुसीबत का मुँह आज न देखना पड़े।"

प्रस्तुत कहानी आज की तथाकथित विकसित सभ्यता की आड़ में फैल रहे अनाचार एवं व्यभिचार पर तीखी चोट करती है।

'बेछि' एक कर्त्तव्यनिष्ठ डॉक्टर अशरफ और एक जवान भिखारिन मोगल की कहानी है, जिसमें एक भिखारिन के जीवन की विवशताओं तथा उसके व्यक्तित्व के साथ घुले-मिले उन संस्कारों का अध्ययन है, जिनके प्रभाव से उसे इस संसार में कोई भी भला आदमी नहीं दिखता। डॉक्टर अशरफ ने उसे इसलिए मुँह नहीं लगाया था; क्योंकि वह जवान थी, सुन्दर थी; बल्कि न जाने क्यों दयावश वह उसे यदा-कदा अस्पताल के बाहर मँडराती देख दो-एक पैसे दिया करता था। एक दिन जब भिखारिन एक सुन्दर-स्वस्थ शिशु को बाहों में लिये अस्पताल के अन्दर दाखिल हुई, तब डॉक्टर अशरफ के आश्चर्य की सीमा न रही। वह सोच भी न सकता था कि भिखारियों के भी ऐसे सुन्दर-स्वस्थ बच्चे हो सकते हैं। वह 'शिशु-प्रतियोगिता' में भाग लेने के लिए इस बच्चे को ले जाता है। डॉक्टर अशरफ का बच्चा सर्वश्रेष्ठ घोषित किया जाता है। पुरस्कार की राशि तथा बच्चे को जब अशरफ उस भिखारिन को लौटाता है, तब वह केवल इतना सोच पाती है :

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मोगलि तो'र सिर्फ यूतुय फिकरि ज़ि डाक्टर सा'बस छि गरि क्या हताम शा'दी आ'समचा़ यि द्रायि कमर मंज़ तेबर त' नेरान नेरान त्रा'वुन डाक्टर अशरफ कुन सो' नज़र जनत' वो'ननस—'च़ क्याहज़ि को'रुथ मे ठठ'। मे शेर्योव सिर्फ चा़नि मो'ख आबे।

अर्थात्, मोगल केवल इतना समझ पाई कि डॉक्टर के घर पर आज कोई महोत्सव है, तभी मुझे इतने सारे रुपये दे रहे हैं। वह धीरे-धीरे कमरे से बाहर निकली और डॉक्टर अशरफ की ओर ऐसी नजर फेंकी, मानों कह रही हो—'मेरा मजाक क्यों उड़ाया तुमने ? मैं तो आज केवल तुम्हारे लिए सजधज कर आई थी।'

'पो'तकल' एक ऐसी निपूती ग्रामयुवती की कहानी है, जो विवाहोपरान्त नौ वर्षों से अपने मायके से दूर ससुराल में रह रही है। इन नौ वर्षों में उसके कोई सन्तान न हुई, यही दुःख एक अभाव बनकर उसे दिन-रात कचोटता रहता है। एक रात वह अपनी बूढ़ी सास की नज़रें बचाकर अपने मायके जाने की ठान लेती है। वह हाँफती-भागती हुई चली जाती है। मायके का गाँव निकट आ जाता है। वहाँ की प्रत्येक वस्तु देखकर उसकी नौ वर्ष पुरानी स्मृति ताजा हो उठती है और उसे अपना बचपन याद आ जाता है। मायके की नदिया, पेड़, झोपड़ियाँ, मिट्टी आदि उसे असीम आनन्द देते हैं। वह झूम उठती है। मायके की नदिया देख उसका हृदय भावविभोर हो जाता है :

असि फीर वुठन प्यठ ज़्यव त' पत्थर बिहिथ लंज अथ जोयि प्यठ त्रेश चेनि। अख दो'छ, ज़ दो'छ, त्रे दो'छ—यि गयि चवान जनत' वुम्बरि जांह आबुक बुथ ओसुन न' वुछमुत। 'कोताह म्यूठ छु यि म्यानि मालिन्युक आबे असि सूंच।....असि पत' द्युतुन बुथिस आब' थोंम्बा दा'रिथ। लंजसया मालिनिक आबा, बा'लिज हा शेहलेयम'-यि वनिय वछ थो'द त' द्रायि गामस कुन।

अर्थात्, उसने अपने होंठो पर जीभ फेरी और नदिया के किनारे के पास बैठकर उसका पानी पीने लगी। एक बार, दो बार, तीन बार—और वह पीती ही गई, जैसे उम्र-भर कभी पानी पिया ही नहीं हो। वह सोचने लगी, मायके का पानी भी कितना मीठा होता है..। इसके बाद उसने मुँह धोया। भरे कण्ठ से निकल पड़ा—रे मायके के पानी ! तुझपर बलिहारी जाऊँ, मेरे हृदय को तूने असीम ठण्डक पहुँचाई।

अन्त में, उसे सहसा ध्यान आता है कि वह निपूती है। (मायके में भी उसकी कद्र न होगी।) इसका पति कल ही तो पास के एक गाँव में एक जोगी से मिलने गया है। सुनते हैं, पहुँचा हुआ जोगी है। शायद उसका तावीज़ काम कर जाये। मुझे घर में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

न देख पति की सारी मेहनत बेकार हो जायगी। ऐसा विचार करते हुए वह मायके न जाकर उलटे पाँव ससुराल की ओर मुड़ जाती है। 'पुत्रकामना'-प्रवृत्ति के व्यापकत्व को सिद्ध करने के लिए कहानीकार ने निपूती ग्रामयुवती के अन्तर्द्वन्द्व तथा उसकी मानसिक गति-अवगति को सफलतापूर्वक चित्रित किया है।

'अश्यफ्यार' एक ऐसी निर्भीक, कर्मठ किन्तु निर्धन एवं विवश युवती के प्राणोत्सर्ग की कहानी है, जो दूसरा विवाह केवल इसलिए करती है कि पहले पति की एकमात्र निशानी गुलामा के पालन-पोषण का कोई मार्ग निकालना जरूरी था। भाग्य की विडम्बना। दूसरा पति भी कुछ ही अरसे बाद चल बसता है। बेचारी अश्यफ्यार को स्वयं घर का भार सँभालना पड़ता है। वह लोगों की रज़ाइयाँ बनाती है, उनमें डोरे निकालती है, 'काँगड़ियों, की मरम्मत करती है आदि। उसका पुत्र यदि थोड़ा-सा भी समझदार होता, तो शायद अश्यफ्यार को यह सब न करना पड़ता। किन्तु, वह निकम्मा केवल खाने के समय हाजिर हो जाता और बाकी समय जुआड़ियों की संगत में या फिर सैर-सपाटे में बिताता। अपनी इस निकम्मी औलाद की बदौलत अश्यफ्यार को कितने ही दुःख झेलने पड़ते हैं। अन्त में, एक दिन पुलिस गुलामा को पकड़कर ले जाती है; क्योंकि उसने किसी जुआड़ी का सिर फोड़ दिया है और उसकी माँ इस सदमे को सहन न कर अपने प्राण दे देती है। अन्तर्मन को छूनवाली यह कहानी एक माँ की संवेदनाओं को खोलकर रख देती है।

अमीन कामिल की अन्य कहानियों में उल्लेखनीय हैं--'कोकर जंग', 'प्यण्डपुरुन', 'जहनमी', 'आर्न', 'फाटक' आदि। ये सभी मानव की विभिन्न स्वभावगत प्रवृत्तियों, स्थितियों, उसकी विवशताओं तथा आकांक्षाओं का सुन्दर चित्रण करती है।

बन्सी निर्दोष की 'मस्तकिलिफ', 'यि ति अख एहसास' आदि कहानियाँ मानव-मन की विभिन्न स्थितियों, विशेषकर मानसिक ग्रन्थियों को खोलने का प्रयास करती हैं, जिनसे यौन-प्रवृत्ति कभी 'सुन्दर' और कभी 'असुन्दर' बन जाती है। 'मस्तकिलिफ' एक नर्स के निष्काम सेवाभाव की मार्मिक कहानी है, जिसकी सेवा-सुश्रूषा अस्पताल के कई रोगियों में नूतन जीवनदायिनी शक्ति का संचार करती है। एक लोलुप रोगी की संकीर्ण दृष्टि तब खुलती है, जब उसे मालूम हो जाता है कि उस वार्ड में उस नर्स का पति भी एक रोग-शय्या पर कई दिनों से पड़ा हुआ था और वह वही था, जिसकी कल रात मृत्यु हो गई। (इसके बाद नर्स को किसी ने नहीं देखा कि वह कहाँ गई।)

'यि ति अख एहसास' निर्दोष की बहुचर्चित कहानी है। कहानी के कथानक का केन्द्र एक छाता है, जिसे एक परोपकारी सज्जन उमड़ती बरसात में किसी अनजान लड़की को दे देते हैं और खुद भीगते हुए उसके पीछे-पीछे हो लेते हैं। घर पहुँचकर वह लड़की उस सज्जन को छाता लौटाना भूल जाती है। पाँच वर्ष तक वह सज्जन, जब-जब पानी बरसता, लड़की के घर के बाहर बिजली के खम्भे की आड़ में खड़ा रहता--इस उम्मीद में कि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शायद उसका छाता वह लड़की लौटा दे। इस बीच लड़की की शादी हो जाती है। एक दिन फिर पानी बरसता है। वह सज्जन पूर्ववत् खम्भे के नीचे उपस्थित हो जाता है। इस बार विम्ला की नज़र उसपर पड़ ही जाती है। उसे पाँच वर्ष पहले की घटना याद आ जाती है। बड़ी मुश्किल से छाता ढूँढ़-निकालकर वह उसे देने के लिए नीचे गली में आ जाती है। दोनों के बीच जो वार्त्तालाप होता है, वह जहाँ एक ओर कहानीकार की पैनी मनोवैज्ञानिक दृष्टि की सूचना देता है, वहीं दूसरी ओर कहानी के अन्त को एकदम कुतूहलपूर्ण बना देता है :

'तल॑ कनि छि यि मोमूली चीज, म्ये कति आ॑स छेतिरिह॑ज फिकिर।'
'अद॑ कमिच फिकिर आ॑स अमिस'–यि पुछ़ मे मनन।
रछ़ खण्ड दम दिथ त॑ शाह सम्बा॑लिथ वो॑न तम्य–
'तमि दो॑ह ओस ना रूद, म्ये दो॑प खबर....।'

अर्थात्, 'मुझे छाते की चिन्ता कहाँ थी, यह तो एक मामूली चीज़ है।'
'फिर इसे किसकी चिन्ता थी'–यह बात दिल ने मुझसे पूछी।
तनिक रुककर तथा दम सँभालकर उसने अपने-आप कहा—
'उस दिन जोर से पानी बरसा था ना, मैंने सोचा कहीं....।'

(कहानीकार ने अन्तिम सम्भाषण की पूर्त्ति का कार्य सहृदय पाठकों के लिए छोड़ दिया है।)

दीपक कौल की विशिष्ट कहानी 'रा॑य्काकन्य ब्रा॑र' में पोशकुज नाम की एक बुढ़िया की चारित्रिक विशेषताओं का अध्ययन अतीव सुन्दर बन पड़ा है। पड़ोसियों ने क्यों खाया, उनके यहाँ कौन आया, कब आया, क्यों आया आदि जिज्ञासाएँ पोशकुज के स्वभाव की चुनी हुई विशेषताएँ हैं। एक दिन उसने देखा कि एक पड़ोसी के यहाँ कोई व्यक्ति कोई चीज टोकरी में छिपाकर ले जा रहा है। खूब प्रयत्न करने पर भी वह इस टोकरी के रहस्य का पता लगाने में असमर्थ रहती है। एक दिन पड़ोसी की नववधू 'चोर-चोर' चिल्लाती हुई आँगन में आ जाती है। भारी भीड़ गली में एकत्र हो जाती है। चोर को पकड़ने के लिए दो-चार लठैत घर में घुस जाते हैं। चोर को पकड़ लिया जाता है। चोर और कोई नहीं, वरन् पोशकुज होती है। बुढ़िया की लाज रखने के लिए पड़ोसी महाशय भीड़ को यह कहकर शान्त करते हैं कि जिसे चोर समझा गया, वह दरअसल एक बिल्ली थी।

उक्त कहानियों के अतिरिक्त सूफी गुलाम मुहम्मद की 'मालद्यद', डॉ० शंकर रैणा की 'वन्य कहंज वा॑र्य', उमेश कौल की 'अड्य कथ', भारती की 'आबनूसुक रोलर : जिगर॑च मिशीन', हरिकृष्ण कौल की 'ताफ', रतनलाल शान्त की 'छायि गत्य', फारूक मसूदी की 'स्यठा मोमूली', ताज बेगम की 'अस्तान डेडितल', गुलाम नबी शाकर की 'अवल सोंत॑क्य पोश', गुलाम नबी बाबा की 'तलखी' आदि कहानियाँ कश्मीरी-कहानी-साहित्य की नव्यतम प्रवृत्ति, यानी मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करती हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ऊपर कश्मीरी-कविता, नाटक एवं कहानी के परिपार्श्व में कश्मीरी-साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों का सोदाहरण विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। हिन्दी के साथ इन प्रवृत्तियों के विकास-क्रम की तुलना करने पर एक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है। कश्मीरी में जब सौन्दर्य-भावना से युक्त स्वच्छन्दतावादी (छायावादी) कविताएँ लिखी जाती थीं, तब हिन्दी में प्रगतिवाद का चलन जोरों पर था। कश्मीरी में जब राष्ट्रीय प्रगतिवादी प्रवृत्ति का विकास हुआ, तब हिन्दी में प्रयोगवाद का चलन प्रारम्भ हो चुका था। कश्मीरी में जब प्रयोगवादी प्रवृत्ति का सन्निवेश हुआ, तब हिन्दी में नई कविता, नई कहानी आदि जैसी नव्यतम प्रवृत्तियाँ अपना मार्ग बनाने लगीं। हिन्दी की ये नव्यतम प्रवृत्तियाँ अभी कश्मीरी में समाई नहीं हैं। हाँ, प्रयोगवाद के कोरे शिल्प-विधान को तिलांजलि देकर उसने मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति को अपनी चिन्तन-प्रक्रिया का आधार अवश्य बना लिया है। इस नाते यह कश्मीरी की अपनी मौलिक प्रवृत्ति कही जा सकती है और उसके लिए अभी यही नव्यतम है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

परिशिष्ट : एक

कश्मीरी-उपन्यास :

कहानी की भाँति कश्मीरी-उपन्यास का जीवन-इतिहास भी ज्यादा पुराना नहीं है। सन् १९५५ ई० में कश्मीरी में प्रथम उपन्यास लिखने का प्रयत्न किया गया। इसका नाम था 'जात बूतरात' और इसके लेखक थे श्रीहबीब कामरान। इस उपन्यास का प्रथम अध्याय सन् १९५५ ई० में कश्मीरी-पत्रिका 'कोंगपोश' में प्रकाशित हुआ था। शेष अध्याय अप्रकाशित ही रहे। इसके बाद तीन उपन्यास और लिखे गये। इनके नाम हैं--- अख्तर मोहीउद्दीन का 'दोद-दग', अमीन कामिल का 'गटि मंज़ गाश' और अली मुहम्मद लोन का 'अंस्य ति छि इन्सान'। कुछ कश्मीरी विद्वान् 'दोद-दग' को कश्मीरी का प्रथम उपन्यास मानते हैं; क्योंकि हबीब कामरान का 'जात बूतरात' कभी पूर्ण रूप से प्रकाशित होकर सामने न आ सका तथा लोग उसे पढ़ न पाये। 'दोद-दग' एक समाजिक उपन्यास है, जिसमें दो बहिनों फाता और राजा के जीवन-संघर्ष, अब्दुल गनी की लोलुपता तथा शमस साहब के पतन की कहानी दर्ज हैं। 'गटि मंज़ गाश' कबाइली आक्रमण की पृष्ठभूमि में लिखित हिन्दी-मुस्लिम मेल-जोल एवं भाईचारे की भावना को जगानेवाला उपन्यास है। 'अंस्य ति छि इन्सान' मूलतः एक रिपोर्ताज है, जिसकी शैली औपन्यासिक कला के काफी निकट है। उक्त तीन-चार उपन्यासों के अतिरिक्त टैगोर के उपन्यास 'चोखेर बाली' का कश्मीरी-रूपान्तर भी मिलता है। रूपान्तरकार हैं श्रीपृथ्वीनाथ पुष्प और उपन्यास का नाम है 'अंच्छ किटुर। (कश्मीरी उपन्यास-साहित्य के नाम पर कुल• इतना ही सरमाया मिलता है।) इस विषम स्थिति के मुख्य दो कारण हैं। पहला कारण उपन्यास-प्रकाशन के लिए समुचित प्रोत्साहन तथा सुविधाओं का अभाव है। कहानी, निबन्ध अथवा नाटक किसी भी पत्र-पत्रिका में सुगमतापूर्वक स्थान पा सकते हैं, किन्तु समूचे उपन्यास का पत्र-पत्रिका में छपना कठिन है। सम्भवतः, यही कारण है कि लेखकगण इस विधा के पीछे नहीं पड़े। उन्होंने छोटी-मोटी कहानियाँ तथा अन्य प्रकार की गद्य-रचनाएँ लिखकर ही साहित्यिक क्षेत्र में प्रतिष्ठित होने की कोशिश की। दूसरा कारण यह है कि जागरूक पाठकों के अभाव ने भी उपन्यासकारों का उत्साह भंग कर दिया। कुछ वर्ष पूर्व राज्य की 'कल्चरल अकादमी' ने लेखकों को पुस्तक-प्रकाशन के लिए अनुदान देने की योजना कार्यान्वित की है। आशा है कि इस योजना से कश्मीरी का उपन्यास-साहित्य प्रगति प्राप्त करेगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मुद्रक : मोहन प्रेस, पटना-४

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शिबन कृष्ण रैणा
एम. ए; पी. एच. डी.
हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय

दिनाङ्क 15/12/71 १९

प्रिय महोदय,

नमस्कार। आपके दो पत्र यथासमय मिले। दोनों का उत्तर मैंने दे दिया था।

जनवरी अंक के लिये पाण्डुलिपि की अगली किस्त भिजवा रहा हूं। पहली किस्त के कुछ पृष्ठ आपके पास हैं – इस किस्त के १२ पृष्ठों के साथ ही १६ पृष्ठों की सामग्री हो जायेगी। इधर काफ़ी व्यस्त रहा, श्रीनगर पर हुये हाल के पाकिस्तानी हमलों ने एकदम निष्क्रिय-सा बना दिया। मेरे परिवार के सभी सदस्य कश्मीर में ही रहते हैं। मेरी परेशानी का अन्दाज़ आप बखूबी लगा सकते हैं।

मैं विगत मास की १७-१८ तारीख़ को पटना में था। वहां पर मुझे निबन्धपाठ करना था। मैंने बहुत चाहा कि लखनऊ भी होता आऊं पर समय निकाल न पाया। अपने निबन्ध की एक प्रति भिजवा रहा हूं। प्रतिक्रिया भेजें।

भवदीय,

Bhandary

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE